"वाक्यपदीय और भाषा का भारतीय दर्शन"
पर व्याख्यान श्रृंखला की कार्यवाही
(31.1.08 से 2.2.08)

<u>स्थान:</u> **'राजश्री हॉल', कात्यायनी अपार्टमेंट,**
दुर्गकुंड, वाराणसी

अभी हाल में 31 जनवरी से 2 फरवरी 2008 तक इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, के वाराणसी स्थित पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा कात्यायनी अपार्टमेंट, दुर्गाकुंड, वाराणसी के राजश्री हॉल में वाक्यपदीय एवं भाषाओं के भारतीय दर्शन पर तीन-दिवसीय व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया।

सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य एमएम. पंडित सीताराम शास्त्री से कार्यक्रम के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करने का आग्रह किया, जबकि प्रो. कपिल कपूर, पूर्व रेक्टर, जवाहरलाल नेहरू विवि. नई दिल्ली मुख्य अतिथि के पद को सुशोभित किया। तीन दिनों में छह व्याख्यान प्रो. राम यतन शुक्ला, प्रो. कपिल कपूर, प्रो. वागीश शुक्ल और प्रो. शिवजी उपाध्याय द्वारा दिए गए। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे:

1. पंडित हेमेंद्र नाथ चक्रवर्ती
2. प्रो. प्रद्योत कुमार मुखोपाध्याय
3. प्रो. वगीश शास्त्री
4. प्रो. कैलाशपति त्रिपाठी
5. प्रो. पारस नाथ द्विवेदी
6. प्रो. बिश्वनाथ भट्टाचार्य
7. डॉ. बेत्तिना बौमर
8. प्रो. आद्य प्रसाद मिश्र
9. प्रो. राम चंद्र पांडे
10. प्रो. राजीव रंजन सिन्हा
11. प्रो. नरेंद्र नाथ पांडेय
12. प्रो. श्रीकांत पांडे

13. डॉ. सुधाकर दीक्षित

14. प्रो. बाल शास्त्री

15. प्रो. कृष्ण कांत शर्मा

16. प्रो. श्री नारायण मिश्रा

17. पंडित रमाकांत पांडे

18. प्रो. वायु नंदन पांडे

19. प्रो. रमेश चंद्र पांडा

20. पंडित कमलकांत त्रिपाठी

21. प्रो. चंद्रमौली द्विवेदी

22. प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी

23. डॉ. कमलेश झा

24. डॉ. मार्क डायज़कोवस्की

25. डॉ. रमा घोष

26. डॉ. चन्द्रकान्ता राय

27. डॉ. शीतला प्रसाद उपाध्याय

28. डॉ. मनुदेव भट्टाचार्य

29. डॉ. जयशंकर लाल त्रिपाठी

30. पंडित पुरुषोत्तम त्रिपाठी

31. पंडित नरेंद्र नाथ त्रिपाठी

32. डॉ. मंजू सुंदरम

33. डॉ. स्वरवंदना शर्मा

34. प्रो. कमलेश दत्ता त्रिपाठी

35. डॉ. सुकुमार चट्टोपाध्याय

36. डॉ. प्रणति घोषाल

37. डॉ. उर्मिला शर्मा

38. डॉ. पार्वती बनर्जी

39. डॉ. रमा दुबे

40. पंडित. महेन्द्र नाथ पाण्डेय

41. श्री निहारकांती, और इ.गाँ.रा.क.के., वाराणसी के अन्य सभी स्टाफ।

वाक्यपदीय एवं व्याकरण के भारतीय दर्शन पर तान दिवसीय व्याख्यानमाला के उद्घाटन सत्र का शुभाआरंभ डॉ. मंजु सुन्दरम द्वरा प्रस्तुत वाग्देवी (परा) की मनोहर स्तुति से किया गया। मंगलाचरण के उच्चारण से पवित्र वातावरण में प्रो. के.डी. त्रिपाठी मानद संयोजक, इ.गाँ.रा.क.के., वाराणसी ने उपस्थित अतिथियों और विद्वानों का स्वागत किया तथा श्रोताओं को अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि का परिचय दिया। बाद में उन्होंने मुख्य भाषण दिया।

अपने व्याख्यान में प्रो. त्रिपाठी ने 1995-96 में इ.गाँ.रा.क.के., वाराणसी के तात्कालीन संयोजक पंडित वी.एन. मिश्र द्वारा वाक्यपदीय पर आयोजित पूर्व व्याख्यानमाला का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। टी.आर.वी. मूर्ति (भारतीय चिंतन का अध्ययन या स्टडीज इन इंडियन थॉट, 1983) उन्होंने कहा कि 19वीं सदी में पश्चिमी विद्वानों के साथ भारतीय संवाद का आधार था अद्वैत वेदांत। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के पूर्वार्ध में इसका स्थान बौद्ध दर्शन ने ले लिया। 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में कश्मीरी शैवमत ने यह स्थान ग्रहण कर लिया और उन्हें उम्मीद है कि आगामी दशकों में यह भूमिका भाषा का भारतीय दर्शन या भर्तहरी या वाक्यपदीय के दर्शन द्वारा निभाई जाएगी।

भाषा के पश्चिमी दर्शन की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने के क्रम में सबसे पहले उन्होंने विद्वानों के दो समूहों का उल्लेख किया- (1) आरंभिक विटेंस्टाइन, चोम्स्की फॉर्मलिस्ट थे जिन्होंने भाषा को नियमों से नियंत्रित क्रियाकलाप माना और (2) परवर्ती विटेंस्टाइन, ऑस्टिन आदि जो कि संचार-प्रवृत्ति सिद्धांतकार थे जिन्होंने भाषा के क्रियात्मकतावादी और संचारात्मक आयामों पर बल दिया। आरंभिक विटेंस्टाइन के अनुसार भाषा विश्लेषण का विषय है। यद्यपि, पारंपरिक भारतीय विचार के अनुसार भाषा की पहचान चेतना से की जा सकती है। अपने परिचयात्मक व्याख्यान में प्रो. त्रिपाठी ने सूचित किया कि वाक्यकंठ के अंत में भर्तहरी ने *¨अष्टह व्याकरणागम¨ पर टिप्पणी की*; व्याकरण की

आगमिक परंपरा लुप्त हो चुकी थी। भर्तहरी के गुरु को इसे पुनर्स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है। दिंगनाग, धर्मकीर्ति कमलशील आदि बौद्ध विद्वानों ने वाक्यपदीय के सिद्धांतों पर प्रहार कर उसे चुनौती दी। मीमांसकों, सांख्यवादियों और वेदांतियों ने भर्तहरी की प्रंशसा की, विशेषकर 'स्फोट' के सिद्धांत की, और सोमानंद जैसे शैव दार्शनिकों ने भी वही किया। हालांकि, उत्पलदेव तथा अभिनवगुप्त भर्तहरी से बड़े गहरे तक प्रभावित थे। एक ओर तो यह वेदांगों में प्रमुख व्याकरण का ग्रंथ था दूसरी ओर यह मौलिक आगमिक ग्रंथ है जिसके बारे में भर्तहरी ने अपने स्व टीका प्रत्यक चैतन्य सन्निवेशित वाक में बताया है। इस शब्दों के साथ प्रो. त्रिपाठी ने भर्तहरी के महत्व और भर्तहरी के भाषाई दर्शन के पोषण की अवश्यकता के बारे में बताया।

जे.एन.यू नई दिल्ली के पूर्व रेक्टर, **प्रो. कपिल कपूर** ने मुख्य अतिथि का भाषण दिया। अपने संक्षिप्त भाषण में, उन्होंने वाक्यपदीय की केन्द्रीय अवधारणा शब्दब्रह्म है जो न केवल भाषा में बल्कि संपूर्ण जगत के अस्तित्व (सत्ता) में सन्निहित है। इस ग्रंथ में शब्द को ही ब्रह्म माना गया है। अपने व्याख्यान के क्रम में उन्होंने विकल्प, विवर्त, परिणाम, अनुकार आदि की अवधारणओं पर चर्चा की।

एमएम. सीताराम शास्त्री ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारतीय दर्शन की सभी प्रणालियों का अपना-अपना उच्चतम सिद्धांत है। व्याकरण के दर्शन में यह उच्चतम सिद्धांत शब्दब्रह्म है। लेकिन यह अवैत वेदांत संप्रदाय के समान है। उन्होंने यहां शब्द-ब्रह्म की उपयोगिता पर प्रश्न उठाया जो कि अन्य दार्शनिक संप्रदायों में पहले से मौजूद है। उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि यह **शब्द-सिद्धांत** है जो ब्रह्म के रूप में माना जाता है। वाक्यपदीय से उद्धरण देने के क्रम में उन्होंने कहा कि संसार का समस्त ज्ञान शब्द में गुंथित है। यदि ज्ञान और शब्द की यह शाश्वत पहचान लुप्त हो जाए तो ज्ञान फिर ज्ञान नहीं रह जाएगा: न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाद्दते/अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते *(वाक.* I.115*)*। अपने व्याख्यान में आगे पं. शास्त्री ने कहा कि शब्द स्वयं अल्पजीवी होता है लेकिन इसका निहितार्थ नहीं; और यह निहितार्थ शब्द अथवा शब्द-तत्त्व को ही ब्रह्म माना जात है। संपूर्ण संसार अपने एवोलुतेस (evolutes) के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इस नाद-ब्रह्म से ध्वनिग्राम के रूप में यह संसार उत्पन्न हुआ है। इस शब्द-ब्रह्म से न केवल हर चीज उत्पन्न हुई है बल्कि इसी में

वे स्थित भी हैं। शब्द-ब्रह्म को मूल मानकर व्याकरण का दर्शन उस उच्चतम सत्य की ओर ले चलता है जो व्याकरण दर्शन की श्रेष्ठता में निहित है।

उद्घाटन सत्र का अंत मानद संयोजक प्रो. के. डी. त्रिपाठी के धन्यवाद मत से हुआ। सत्र का संयोजन डॉ. सुकुमार चट्टोपाध्याय ने किया।

प्रथम सत्र

प्रो. राम यत्न शुक्ल वाक्यपदीय व्याख्यानमाला के प्रथम सत्र के मुख्य वक्ता जिन्हें ब्रह्मखण्ड के प्रकाश में वाक्यपदीय की तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा पर बोलना था। लेकिन, विषय की विशालता को देखते हुए प्रो. शुक्ल ने केवल वाक्यपदीय की तत्त्वमीमांसा पर ही चर्चा की जो कि प्रथम पांच श्लोकों में प्रच्छन्न रूप से निहित है।

सबसे पहले उन्होंने वाक्यपदीय के तीन पहलुओं- प्रक्रिया (शब्द निर्माण की प्रक्रिया), *परिष्कार* (अवधारणा, परिभाषा का विश्लेषण और परिपूर्णन) का उल्लेख किया तथा दर्शन का उल्लेख किया और इसके बाद आगे उन्होंने इस बात पर चर्चा की कि भर्तहरी ने किस प्रकार आरंभिक परिचयात्मक श्लोक में वस्तुनिर्देश यानि अनादिनिधान ब्रह्म का उल्लेख करते हुए मंगलाचरण प्रस्तुत किया है जो कि और कुछ नहीं बल्कि अक्षर शब्द-तत्त्व है। मंगलाचरण के अलावा चार पूर्वशर्तों (विषय, प्रयोजन, अधिकारी और संबंध) पर भी इस श्लोक के माध्यम से चर्चा की गई। यहां भर्तहरी ने *सत्तवरूप ब्राह्मण* का उल्लेख किया और ब्रह्म कंठ स्फोट, ध्वनि आदि पर चर्चा की। संक्षेप में, शब्द ब्रह्म का प्रचार इस ग्रंथ की विषय वस्तु है। इस संदर्भ में उन्होंने व्याकरण में ब्रह्म की चर्चा होने का कारण बताया कि यह शुद्ध वाक् की प्राप्ति या मुक्ति की ज्ञान-प्राप्ति है जिसे पहले ही अद्वैत वेदांत में स्थापित किया जा चुका है। यह सच है कि जन्मद्यास्य यत¨ (बी.एस. I.1.2) और सत्यम ज्ञानम अनंतम ब्रह्म (टीयूपी II.1.3), अद्वैतवादियों ने तटस्थ एवं स्वरूप लक्षण दोनों को शामिल किया है लेकिन उन्होंने यह प्रतिपादित नहीं किया कि शब्द अपने आप में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं। इसके विपरीत यह शब्द व्याकरण के आचार्यों के लिए सबसे ज्यादा रुचिकर है। उनके लिए, यह शब्द सर्वोच्च सत्ता के समान है। इस शब्द-तत्त्व पर ध्यान लगाकर जिज्ञासु व्यक्ति परम सत्य की अनुभूति करता है और उसके साथ एकाकार हो जाता है। इस तरह से, व्याकरणशास्त्रियों ने दोनों

परिभाषाएं दी हैं; और प्रथम श्लोक के उत्तरार्ध में सृष्टि के सिद्धांत दिए गए हैं। इस सृष्टिप्रक्रिया के संदर्भ में व्याकरण शास्त्री ने अध्यारोप-अपवेद (अध्यारोपण एवं इसकी विपरीत क्रिया) का मार्ग अपनाया है।

स्पष्ट रूप से, यहां विश्व के सर्जक के रूप में ब्रह्म पर प्रश्न उठ खड़ा होता है। किस प्रकार समस्त गुणों और भेदों से रहित (निर्गुण और निर्भेद) सर्वोच्च ब्रह्म संसार की सृष्टि के क्रम में शब्द, अभिप्राय आदि के रूप में प्रकट हुए इस बारे में वाक्यपदीय कहता है कि यह शक्ति की सहायता से संभव हुआ जो ब्रह्म का अविच्छिन्न अंग है। इस प्रकार, यह शब्द-तत्त्व सृष्टि का कारण होता है। वह शब्दद्वैत और ब्रह्मद्वैत पर प्रश्न उठाते हैं कि क्या वे एक ही हैं या अलग-अलग? प्रो. शुक्ल की राय में ये एक ही वस्तु के दो अलग-अलग नाम हैं।

इस विमर्श पर **पं. पुरुषोत्तम त्रिपाठी** ने अध्यक्षीय भाषण और कुछ ज्ञानवर्धक टीकाएं की। वाक्यपदीय एक ही साथ व्याकरण और दर्शन का ग्रंथ है। मूल रूप से यह व्याकरण से संबंधित है यानि शब्द, वाक्य, उनका अर्थ, संबंध आदि जो हमें प्रक्रिया चरण में मिलते हैं। द्वितीयतः, यह हमें बताता है कि किस प्रकार शब्द का उपयुक्त ज्ञान और प्रयोग परम लक्ष्य की ओर ले जाता है। यह परिष्कार (शिक्षा/विश्लेषण) चरण के अंतर्गत आता है और कुल मिलाकर इसकी प्रकृति आगमिक होती है। इस तरह प्रक्रिया, परिष्कार और आगम- ये तीनों तत्त्व वाक्यपदीय के अंतर्गत आ जाते हैं। चार पूर्व आवश्यक वस्तुएँ के संबंध में (1) अनादि, अपरिवर्तनीय शब्द का विषय है, (2) शब्द सिद्धांत का सही ज्ञान है इसका उद्देश्य है ....इस तरह से अनुबंधकटुसत्य की चर्चा की गई है।

प्रो. शिवजी उपाध्याय, प्रो. श्रीकांत पांडेय, प्रो. चन्द्रमौली द्विवेदी, प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी, प्रो. आद्य प्रसाद मिश्र ने विषय पर कई प्रश्न पूछे जिनके विज्ञ वक्ता द्वारा समुचित उत्तर दिए गए। यह सत्र प्रो. कृष्णकांत शर्मा द्वारा संयोजित किया गया।

द्वितीय सत्र

द्वितीय सत्र में **प्रो. कपिल कपूर** भर्तहरी के शब्द-सार पर बोले। प्रो. कपूर ने अपना व्याख्यान भाषा की पश्चिमी अवधारणा का उल्लेख करते हुए दिया। सबसे पहले उन्होंने भारतीय और पश्चिमी विचारकों के बीच के शब्दावली संबंधी भेद को दर्शाया। भारतीयों के लिए भाषा वाक् यानि

सुना जा सकने वाला शब्द है जबकि पश्चिमी विचारकों के लिए यह लेखन प्रक्रिया/लिपि है। यूनानियों के लिए लिपि पवित्र होती थी, वे इनकी आराधना करते थे। उनके लिए जो दिखता था वही सच्चा या प्रामाणिक था और चूंकि लिपि भी दिखती है इसलिए वह भी प्रामाणिक थी। उस अर्थ में, शब्द प्रामाणिक है और उसे ईश्वर माना गया। बाइबल या एंजेल कहता है कि यह प्रामाणिक है। इसलिए, भाषा की स्थिति भारत में वाक् के रूप में और लिपि के रूप में यूरोप में भिन्न-भिन्न है।

यूरोपीय दार्शनिकों का कहना है कि भाषा विवरणात्मक या बोधात्मक होती है और नाम एवं विवरण देकर वह किसी भी चीज को परिभाषित कर सकती है। दूसरी ओर, प्राच्य विचारक मानते हैं कि भाषा सत्तात्मक होती है। भाषा/वाक् पहले से मौजूद थी जिससे इस ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई। तीसरे, पश्चिमी विचारकों के लिए भाषा अभिव्यक्तिशील संरचना या व्यवस्था है। वे भाषा को संचार के जरिए व्यवहारवाद के रूप में परिभाषित करते हैं। वे पैटर्न व्यवहार में विश्वास करते हैं। लेकिन भारत में भाषा संज्ञानात्मक प्रणाली है। वे संचार को भी मानते हैं, लेकिन उसे प्राथमिक स्थान नहीं देते। भारतीय विचारकों के लिए संचार का आधार संज्ञानात्मक है। प्रो. कपूर ने बताया कि स्विट्जरलैंड निवासी सॉसर ने आधुनिक भाषाविज्ञान से यूरोप को परिचित कराया। इस समय तक पश्चिमी विचारकों ने मुख्यतः भाषा के पैटर्न व्यवहार पर बल दिया। यह प्रो. सॉसर ही थे जिन्होंने संज्ञानात्मक प्रणाली के रूप में भाषा पर बल दिया और तब से यह विश्वविद्यालयों में आधुनिक भाषाविज्ञान का विषय बना।

भाषाविज्ञान की भारतीय अवधारणा के संदर्भ में प्रो. कपूर ने बताया कि भर्तहरी से पहले भी भाषा की एक लंबी परंपरा रही है। मीमांसकों के अनुसार श्रुति की भाषा संदर्भात्मक नहीं है, वे रूपकात्मक हैं; इसलिए इनमें स्पष्ट अर्थ की बजाए लक्षित अर्थ समीचीन होता है। अतएव, वे निरुक्त और मीमांसा ग्रंथों के सार का उपयोग कर वैदिक मंत्रों की व्याख्या करते हैं। बाद के समय में अपने निरुक्त में यक्ष ने शब्दों का व्युत्पत्ति-विषयक अर्थ प्रस्तुत किया है, लेकिन उस काल तक अर्थ कुछ सीमा तक बदल गया था; इसलिए कौस्त ने उनकी वैधता पर सवाला उठाया।

यक्ष ने कहा कि वैदिक मंत्रों का अर्थ निश्चित करने के क्रम में व्युत्पत्ति-विषयक अर्थ आवश्यक होता है। बौद्ध सत्तामीमांसक कहते हैं कि यह संपूर्ण पड़ताल व्यर्थ है। शब्द/भाषा का व्यवहार चीजों के मानसिक प्रभाव को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। लेकिन यह शब्द क्षणिक

है, इसलिए यह निरर्थक है। इसके बावजूद संसारी कार्य-व्यापार में निरंतरता यह दर्शाती है लोग अब भी उसी ढर्रे पर सोचते हैं। मीमांसकों के अनुसार, खासकर शबरस्वामी के अनुसार शब्दों का अर्थ उसके प्रचलित प्रयोग-संदर्भ के अनुसार लिया जाना चाहिए। यह व्यवहार में सन्निहित होता है। भर्तहरी कहते हैं, शब्द का अर्थ शब्द में ही निहित होता है। यही कारण है कि सही शब्द जानने वाला व्यक्ति गलत प्रयोग से भी इसके सही अर्थ का पता लगा लेता है। इसलिए, अर्थ संज्ञानात्मक होता है, संदर्भिक नहीं। महाभाष्य में अर्थ पकड़ने का तात्पर्य एक मानसिक क्रिया के रूप में बताया गया है, यही कारन है कि एक ही स्त्री की छवि अलग-अलग पुरुष के मन में अलग-अलग भावना उत्पन्न करती है।

अपने व्याख्यान के क्रम में प्रो. कपूर ने कहा कि भर्तहरी का दर्शन वेद पर आधारित है और पतंजली का दर्शन योग प्रणाली पर। नैयायिकों के अनुसार शब्द अणु है। मीमांसा इसे वायवात्मक मानता है, जबकि जैनों के लिए यह केवल पुद्गल है। लेकिन भर्तहरी के लिए, शब्द ज्ञान के सिवा कुछ नहीं। वह कहते हैं, संसार में ऐसा कोई बोध या संज्ञान नहीं जिसमें कोई शब्द आकार न ले। समस्त ज्ञान शब्द के साथ अंतर्गुथित है। उनके अनुसार पदार्थ और ऊर्जा अलग-अलग नहीं होते। संपूर्ण जगत कंपायमान/ऊर्जस्वित पदार्थ है। जहां तक इसकी उत्पत्ति या सृजन का सवाल है, कहा जा सकता है कि व्याकरणशास्त्री बौद्धिक कार्य के रूप में शब्द से सृजन का प्रतिपादन करते हैं; और उस अर्थ में शब्द ब्रह्म है। वह जो अविरूपित है और सृजन की प्रक्रिया में भूमिका निभाता है, ब्रह्म है।

भर्तहरी ने अनादि की व्याख्या एक ऐसी चीज के रूप में किया है जिसकी शुरुआत यानि आदि अज्ञात हो। उस अर्थ में शब्द अनादि (आदिरहित), अक्षर (जिसका क्षरण न हो), अविकार (जिसमें कोई परिवर्तन न हो) तथा अक्रम (जिसका क्रम न हो) है; लेकिन वैखारी वाक् सविकारी और सक्रम होता तो यह वैखारी वाक् सर्वोच्च सिद्धांत की ओर किस प्रकार ले जा सकता है? भर्तहरी इसके निदान में कहते हैं कि परा, पश्यंति, मध्यम तथा वैखारी ये सभी केवल भाषा के स्तर हैं। लेकिन पश्चिमी विचारक केवल वैखारी वाक् यानि सुनी जा सकने वाली भाषा पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। भर्तहरी ने पारंपरिक चार स्तरों को इस प्रकार स्वीकारा है - परा वाक् को संज्ञानात्मक (संकल्पात्मक) रूप में, पश्यंति को वायु रूप (वायवात्मक) रूप में, मध्यमा को वर्णात्मक (यद्यपि

अति सूक्ष्म वर्णात्मक) रूप में तथा वैखारी को ध्वनि (ध्वन्यात्मक) रूप में यानि सुनी जा सकने वाली भाषा के रूप में।

यह ध्वनि (शब्द) सांसरिक प्रक्रियाओं का मूल है और यही वेद का मूल है। क्योंकि समस्त साहित्य शब्द से निर्मित है जिसके बिना कोई भी किसी चीज को समझ नहीं पाएगा और बिना ज्ञान या बोध के जिज्ञासु मुक्ति नहीं पा सकता। उस अर्थ में शब्द के चार स्तर मुक्ति के चरण हैं।

इस संदर्भ में प्रो. कपूर ने अपशब्द की अवधारणा और उपयुक्त शब्द के उपयोग की आवश्यकता एवं इसके लाभ पर चर्चा की। क्योंकि वैयाकरणिकों के अनुसार उच्चतम लक्ष्य हासिल करने के लिए सही शब्द का ज्ञान और इसका उचित उपयोग आवश्यक है। यही कारण है कि महाभारत ने दुष्ट शब्द और विकृत शब्द (अपशब्द) के उपयोग को प्रतिबंधित किया है। पतंजलि कहते हैं, जो व्यक्ति शब्द का रहस्य जानता है उसे ज्ञान का शरण प्राप्त होता है (अथ यो वाग्योगविद विज्ञानम तस्य शरणम्)।

डॉ. रमाकांत पांडेय ने *दुष्टशब्द, मलेच्छ शब्द*, अपशब्द आदि के सही अर्थ पर कुछ सवाल उठाए जिनका यथायोग्य समाधान प्रो. कृष्णकांत शर्मा द्वारा किया गया जिन्होंने संपूर्ण सत्र का संयोजन किया।

प्रद्योत कुमार मुखोपाध्याय ने अपने अध्यक्षीय भाषण में वाक्यपदीय पर शोधकार्य से संबंधित कुछ सवाल उठाए;

1. व्याकरणिक सिद्धातों पर कोई भी व्यक्ति, जो व्याकरण का ज्ञाता न हो कैसे प्रश्न उठा सकता है? व्याकरणिक प्रणाली में मुख्यतः दो प्रकार के ग्रंथों के पाठ हैं प्रकिया संबंधी (प्रक्रियात्मक) और विश्लेषणात्मक या दार्शनिक (तत्त्वनिर्णायात्मक)। पाणिनि की अष्टाध्यायी पहली श्रेणी से संबंधित है। इन प्रक्रिया ग्रंथों के विश्लेषण के लिए विश्लेषण और दार्शनिक ग्रंथों की रचना हुई। महाभाष्य और वाक्यपदीय का संबंध द्वितीय वर्ग से है। अब सवाल व्याकरण दर्शन या भाषादर्शन में दर्शन शब्द के अर्थ को लेकर उठता है।
2. दूसरा सवाल, भाषा का दर्शन क्या है? प्रो. मुखोपाध्याय के अनुसार किसी भी दर्शन में कम से कम तीन आवश्यक तत्त्व होते हैं: (1) सर्वोच्च सिद्धांत और तब सृष्टि की रचना, (2) इस सिद्धांत को जानने के साधन और (3) उस ज्ञान के जरिए मुक्ति। ये तीन दर्शन की

विशेषताओं को निर्दिष्ट करते हैं। इस अर्थ में न्याय, वेदांत आदि दर्शन के संप्रदाय हैं। वाक्यपदीय भी इन शर्तों को पूरा करता है। पुनः, किसी भी अवधारणात्मक अथवा विश्लेषणात्मक अध्ययन को दर्शन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है; और इस अर्थ में वाक्यपदीय को भाषा का दर्शन कहा जा सकता है। यह भाषा का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है जो निम्नलिखित के बारे में है- (1) भाषा की प्रकृति, (2) यह किस प्रकार सीखी जाती है, (3) भाषा संसार के साथ किस प्रकार जुड़ती है, (4) भाषायी संचार किस प्रकार संभव है, तथा (5) क्या यह ज्ञान का एक वैध स्रोत हो सकती है? वाक्यपदीय के अंतर्गत ये सभी पहलू आते हैं। यह हमें भाषा का दर्शन और भाषा शास्त्र के संप्रदाय का दर्शन दोनों उपलब्ध कराता है।

भर्तहरी के व्याकरण दर्शन की केन्द्रीय अवधारणा स्फोट है। प्रो. मुखोपाध्याय ने कहा कि यह आश्चर्यजनक है कि दर्शन के सभी संप्रदाय पाणिनि के व्याकरण को स्वीकार करते हैं और उसे उपयोग में लाते हैं, लेकिन मीमांसकों के अपवादस्वरूप, खास कर मंदना मिश्र, किसी ने भी स्फोट को स्वीकार नहीं किया। न केवल वे इस सिद्धांत को मानने हेतु अनिच्छुक हैं बल्कि उन्होंने इसे जोरदार तरीके से खारिज भी कर दिया। उनका दृष्टिकोण क्या है? दूसरा सवाल स्फोट और भाषा के इस दर्शन के संबंध को लेकर है। स्फोटवाद के अनुसार शब्द पहला सिद्धांत (तत्त्व) है और उस अर्थ में यह ब्रह्म है। भर्तहरी ने यह प्रतिपादित किया कि यह शब्द और ब्रह्म एक ही है।

शंकर संप्रदाय साधरण बोध या संज्ञान तथा परम ज्ञान के अर्थ में ज्ञान शब्द का इस्तेमाल करता है (जैसे घटज्ञान)। घटज्ञान की स्थिति में चेतना आंतरिक अंग के मनोजगत (अंतःकरण वत्ती) में घट के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। लेकिन सत्यम, ज्ञानम अनंतम ब्रह्म अथवा अहम ब्रह्मोस्मि की स्थिति में, सत्य का अनुभव/बोध आंतरिक अंग (वात्त्यात्मक) की मनोविक्षिप्ति के रूप में नहीं होता। पूर्ण चेतना और आंतरिक अंग की निष्क्रिय मनोविक्षिप्ति (अंतःकरणवत्ति) दोनों ही स्थितियों में ज्ञान शब्द का प्रयोग होता है। उस स्थिति में एक उपयोग मुख्य होता है जबकि दूसरा गौण।

ब्रह्मद्वैत संप्रदाय ने इस समस्या को इसतरह हल किया: ज्ञान प्रकाशवान होता है, यहां घटज्ञान यानि जो घट के रूप में आंतरिक अंग की मनोविक्षिप्ति के द्वारा परिभाषित होता है, इसे ज्ञान नहीं माना जा सकता।

ज्ञान वह है जो घट के बारे में अज्ञान को दूर करता है। वत्ति का कार्य अज्ञानता को हटाने पर जाकर खत्म होता है; यह ज्ञान है, इसे चेतना कह सकते हैं जो घटज्ञान का भेद प्रकट करता है। ब्रह्मद्वैतिन कहते हैं अज्ञाननाशकत्वत, विषयप्रकाशकत्वच्च ज्ञानत्वम। अब यह प्रकाशक प्रवृत्ति (प्रकाशकत्व) का संबंध शब्द/वाक् और ज्ञान दोनों से है। अब सवाल है वागरुपता चेदुत्क्रामेत् अवबोधस्य शाश्वती में आने वाला वाक् शब्द शब्द-सिद्धांत है या सुनी हुई भाषा यानि वैखारी वाक् है? प्रो. मुखोपाध्याय ने सवाल उठाया लेकिन इसे अनसुलझा ही छोड़ दिया।

व्याकरणाचार्य वाक् शब्द का प्रयोग (1) प्रमाण और (2) शक्ति के संदर्भ में दो स्थानों पर करते हैं। प्रमाण के संदर्भ में यह शब्द वाक्य या पद को और शक्ति के संदर्भ में अर्थ को निरूपित करता है।

कम से कम उन्होंने यह कहा कि शास्त्र की आवश्यकता हमारे दैनिक जीवन को चलाने के लिए नहीं पड़ती है। शास्त्र का उद्देश्य है हमें जीवन के परम लक्ष्य- ज्ञान की ओर ले जाना। ज्ञान का (1) अधिग्रहण, (2) संरक्षण और (3) विस्तार- ये तीन उद्देश्य हैं दार्शनिक ग्रंथों के।

अपने व्याख्यान के अंत में मानद संयोजक ने सत्र के बारे में संक्षेप में बताया और सबको धन्यवाद ज्ञापित किया। इस सेशन का संयोजन प्रो. रमेश चंद्र पांडा में किया।

तीसरा सत्र (1.2.2008**)**

व्याख्यान श्रृंखला का तीसरा सत्र 1.2.2008 की सुबह पं. एन.एन. त्रिपाठी के वेद पाठ के साथ आरंभ हुआ। यहां मुख्य वक्ता प्रो. रामयत्न शुक्ल थे और अध्यक्षीय समिति के सदस्य थे प्रो. प्रशांत द्विवेदी और प्रो. श्रीनारायण मिश्र।

प्रो. राम यत्न शुक्ल ने वाक्यपदीय की स्फोट की अवधारणा प्रतिपादित की। मंगलाचरण श्लोक के प्रथम अर्धांश में भर्तहरी ने स्वरूप लक्षण प्रस्तुत किया और दूसरे अर्धांश में उन्होंने शब्दब्रह्म का तटस्थलक्षण प्रस्तुत किया। अपने विस्तृत व्याख्यान में उन्होंने स्फोट की शब्द व्युत्पत्ति: 'स्फुटतीर्थो यस्मत् सा स्फोट' अथवा स्फोट यते अनेन इति स्फोट पर चर्चा की। इस व्युत्पत्ति के अनुसार शब्द और उसका अर्थ दोनों ही स्फोट द्वारा सूचित किए जाते हैं। इसके बाद, विद्वान वक्ता ने स्फोट को स्वीकार करने की आवश्यकता पर चर्चा की। शब्द की क्षणिक प्रवृत्ति के

कारण अर्थ सीधे तौर पर नहीं समझा जा सकता है और संपूर्ण अर्थ को समझने के लिए स्फोट आवश्यक होता है। उन्होंने बताया कि पिछले शब्द के प्रभाव की मदद से अंतिम ध्वनिग्राम कई वर्णों वाले शब्द के अर्थ निरूपित करता है (पूर्वापूर्व वर्णोच्चारित संस्कार-सहकटा-चरमवर्ण-श्रवणत सदासद अनेकवर्ण अवगाहिनी पादप्रतीतिर्जायते, स एव स्फोट)- स्फोट को इसी रूप में मीमांसा ग्रंथों में प्रतिपादित किया गया है। इसके बाद उन्होंने आठ प्रकार के स्फोटों पर चर्चा की: (1) वर्णस्फोट, (2) पादस्फोट, (3) वाक्यस्फोट, (4) अखण्डपदस्फोट (5) अखण्ड वाक्यस्फोट तथा जातिस्फोट जिसका संबंध है (6) वर्ण, (7) पाद और (8) वाक्य एवं उसके कार्य से। अपने व्याख्यान के क्रम में महाभारत और वर्तिका के उद्धरणों के हवाले से उन्होंने (1) स्फोट, (2) शब्द, (3) अर्थ और (4) उनके संबंधों का प्रतिपादन किया।

इस व्याख्यान के मुख्य वक्ता थे प्रो. एन. श्रीनिवासन और प्रो. चन्द्रमौली द्विवेदी जिन्होंने मीमांसा संप्रदाय और अलंकार संप्रदाय के नजरिए से स्फोट शब्द की स्थिति पर चर्चा की। प्रो. सुधाकर दीक्षित ने इसी अवधारणा पर न्याय दर्शन के नजरिए से विचार किया।

अध्यक्ष समिति के एक सदस्य **प्रो. श्री नारायण मिश्र** ने व्याख्यान पर अपनी समीक्षा प्रस्तुत की। सबसे पहले उन्होंने स्वतंत्र रूप से वाक्यपदीय में स्थापित सिद्धांतों को समझने की कुछ कठिनाइयों का उल्लेख किया।

1. भर्तहरी की रचना व्याकरण पहली बार एक संपूर्ण दर्शन बनी, वास्तविकता का एक सोद्देश्य दर्शन।
2. प्रथम टिप्पणीकार हेलराज ने ग्रंथ पर टीका की जो भर्तहरी से कम से कम 700 साल बाद हुए थे। समय के इस बड़े अंतराल के कारण शब्द का अर्थ कुछ हद तक बदल गया।
3. एक अन्य टिप्पणीकार नागेशभट्ट ने कश्मीरी शैवमत की दृष्टिकोण से वाक्यपदीय के श्लोकों की व्याख्या की है। शैव दर्शन के गहरे प्रभाव के कारण व्याकरण दर्शन के सिद्धांतों को स्वतंत्र रूप से समझना मुश्किल है।

भर्तहरी ने तीन स्तर के वाक् का प्रतिपादन किया है, उसने प्रवाक् का अलग से उल्लेख नहीं किया है।

प्रो. मिश्र के अनुसार व्याकरण दर्शन को सही रूप से समझने के लिए वाक्यपदीय पर और अधिक अध्ययन, शोध और सही विश्लेषण किए जाने चाहिए।

अपने व्याख्यान के दौरान उन्होंने बताया कि शब्दत्व को शब्दगम्य तत्त्व के रूप में भी व्याख्यायित किया जा सकता है। उनके विचार से यदि शब्द सिद्धांत के समकक्ष अनादिनिधान ब्रह्म अपने को रचनात्मक प्रक्रिया में अर्थ के रूप में प्रकट करता है तो उस स्थिति में उसकी शाश्वतता को चुनौती मिलती है। महाभाष्य के द्रव्य शक्तिवाद और जातिअशक्तिवाद के उदाहरण से प्रो. मिश्र ने बताया कि प्रथम परिघटना का द्वितीय के साथ आत्मसातीकरण गैर-ध्वनिग्राम मूल के व्यक्तिगत परिघटना के विलोपन का परिचायक है, अतएव, पूर्ण अर्थ को सीधी समझना संभव है। प्रो. मिश्र के अनुसार पतंजली का उद्देश्य था भाषा को व्यवस्थित रूप प्रदान करना न कि कोई दार्शनिक सिद्धांत प्रतिपादित करना। इस कारण, सिद्धे शब्दार्थसंबंधे की व्याख्या के समय कभी उन्होंने द्रव्यशक्तिवाद की स्थापना की तो कभी जातिशक्तिवाद का समर्थन किया।

मानद संयोजक ने प्रो. मिश्र द्वारा उठाई गई सभी आपत्तियों का परीक्षण किया और अब तक दिए गए सभी व्याख्यानों की संक्षिप्त व्याख्या की।

अध्यक्षीय समिति के एक अन्य सदस्य **प्रो. प्रशांत द्विवेदी** ने वेदांत के अद्वैतवादी नजरिए से स्फोट के सिद्धांत का परीक्षण किया। लेकिन उन्होंने न्याय दर्शन के दृष्टिकोण से आरंभ किया और बताया कि नैयायिक ने स्फोट के व्याकरणवादियों का नजरिया नहीं अपनाया। अपने व्याख्यान के दौरान उन्होंने कहा कि शब्द शाश्वत हो सकता है और नहीं भी हो सकता है, लेकिन तब भी अर्थ समझा जा सकता है। अब सवाल शब्द की शाश्वतता की आवश्यकता को लेकर है। शंकर ने इस नजरिए को ब्रह्मसूत्रभाष्य में इगोद्सी (बीएस I.3.28-I.3.30) शीर्षक के अंतर्गत विस्तार से परीक्षण किया है। इस प्रणाली के अनुसार श्रुति की वैधता को केवल तभी स्थापित किया जा सकता है जब शब्द, अर्थ और उनके संबंध की शाश्वतता को निर्धारित कर लिया जाए। नैयायिकों ने इस उद्देश्य की पूर्ति नश्वर की सहायता से की और स्फोट को नकार दिया। जो शब्द कान में प्रवेश करता है वह शब्द का सार है न कि वर्ण और न ही यह पद होता है, न ही वाक्य। शंकर देवताअधिकरण में सबसे पहले मीमांसा के इस दृष्टिकोण को खारिज करते हैं कि पूर्ववर्ती पद के प्रभाव की मदद से बनने वाला स्वरग्राम अर्थ संचरित करता है। लेकिन शब्द की शाश्वतता को नकारने से वेद की वैधता पर

सवाल उठ जाता है। इसलिए वह उपवर्ष के गकारऔकार विसर्जनीय दृष्टिकोण से सहमत होते हैं और वर्णस्फोट को स्वीकारते हैं। वर्ण पद के अर्थ को संचरित करता है और तब केवल अर्थ प्रकट होता है। प्रो. द्विवेदी शंकर का दृष्टांत देते हुए गकारऔकार विसर्जनीय गवर्थस्य वाचक सा उच्चारणदेव जायते, अनुच्चारनत अर्थबोध न जायते। जब पूर्वपक्षिन आपत्ति करते हैं कि स्फोट को बिना स्वीकारे, पद प्रतीति असंभव हो जाता है तो उस स्थिति में शंकर ने पदात्म जैसा कुछ स्वीकार किया; लेकिन स्फोट के अन्य प्रकार शंकर की प्रणाली में स्वीकृत नहीं हैं। शंकर के अनुसार वह गरीयसी कल्पना (बीएस I.3.28) होगी। इस सत्र का संयोजन प्रो. बाल शास्त्री ने किया।

चौथा सत्र

चौथे सत्र में वक्ता थे प्रो. वागीश शुक्ल और उनका विषय था वाक्यपदीय, भर्तहरी एवं उनके टीकाकार। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी (वागीश शास्त्री) ने की और इसका संयोजन डॉ. कमलेश झा ने किया।

सत्र की शुरुआत में मानद संयोजक प्रो. के.डी. त्रिपाठी ने श्रोता को वक्ता और अध्यक्ष का परिचय दिया और वाक्यपदीय की ग्रंथसूची तथा पिछले सौ सालों की इससे संबंधित रचनाएं प्रस्तुत की। इसके बाद उन्होंने इन विषयों पर कुछ सवाल उठाए (1) विवर्त की अवधारणा के सदर्भ में अद्वैत वेदांत और व्याकरण संप्रदाय, (2) अभाषा तथ प्रतिभाषा के बीच के अंतर, (3) कालशक्ति अविद्याशक्ति से संलग्न है तो फिर इसे फिर हेलराज ने स्वातंत्र्य शक्ति के रूप में क्यों परिभाषित किया? प्रो. त्रिपाठी ने उम्मीद जताई कि आगामी व्याख्यानों में इस समस्याओं का हल निकाला जाएगा।

प्रो. वागीश शुक्ल को भर्तहरी, वाक्यपदीय और उसकी टीकाओं पर बोलना था। सबसे पहले प्रो. शुक्ल ने भर्तहरी के टीकाकारों वृषभा या ऋषभवेद, हेलाराज, पुण्यराज, रघुनाथ शर्मन आदि का उल्लेख किया। अपने व्याख्यान के क्रम में उन्होंने कहा कि वाक्यकंठ के अंत में भर्तहरी ने उसके एक पूर्ववर्ती चन्द्राचार्य के नाम का उल्लेख किया। क्या वह चद्रगोमिन और कंद्रव्याकरण के लेखक एक ही व्यक्ति है? क्या महाभाष्य परंपरा का ग्रंथ कंद्रव्याकरण है? बाद में उन्होंने कुछ अन्य प्रतिपादकों के

नाम का उल्लेख किया, जैसे- लक्ष्मण, रावण आदि जिनका उल्लेख वाक्यपदीय की टीकाओं में मिलता है।

वाक् के तीन या चार स्तरों के संदर्भ में प्रो. शुक्ल ने टिप्पणी की कि पश्यंति, मध्यम और वैखारी वाक के अलग-अलग रूप हैं, जबकि परा को अन्य तीन का सम्मिलित रूप। उन्होंने संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रंथों के हवाले से भर्तहरी के उद्धरणों का उल्लेख किया। संस्कृत और अपभ्रंश के संबंध पर चर्चा करते हुए, उन्होंने कहा कि पाणिनि के व्याकरण के ही कितने सारे गैर-पाणिनीय उपयोग हैं।

प्रो. भगीरह प्रसाद त्रिपाठी (वागीश शास्त्री) ने अपने अध्यक्षीय संबोधन में वक्ता के सभी बिंदुओं का परीक्षण किया और कहा कि पाणिनि के उपयोग गैर-पाणिनीय नहीं हैं। इन स्थितियों में हमारे प्रतिष्ठित व्याकरणवादी ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रयोगों को यथातथ्य स्वीकार किया।

अपने व्याख्यान में प्रो. शास्त्री ने भर्तहरी की तिथि, उनकी पहचान आदि पर सवाल उठाया।

संस्कृत साहित्य के विशाल विस्तार में कम से कम तीन भर्तहरी का उल्लेख हुआ है। 1) वाक्यपदीय के लेखक के रूप में भर्तहरी, 2) शतकत्रय के रचयिता के रूप में भर्तहरी और 3) भट्टीकाव्यकम के लेखक भट्टी, अब सवाल उठता है कि ये नाम एक ही व्यक्ति के अलग-अलग नाम हैं या तीनों अलग-अलग व्यक्ति हैं। यदि ये तीनों एक ही व्यक्ति की रचनाएं हैं तो उसकी (भर्तहरी की) तिथि निश्चित करना कठिन हो जाता है। हालांकि वाक्पदीय और भट्टीकाव्य चौथी शताब्दी की रचनाएं हैं। शतकत्रय का रचना काल मोटे तौर पर 10वीं/11वीं शताब्दी तय किया गया है। लेकिन वाक्यपदीय और शतकत्रय के बीच भाषायी साम्य से इनकार नहीं किया जा सकता है।

भर्तहरी इस विशाल संकलन को आकार दिया है और इसी में उनकी विशेषज्ञता प्रकट होती है। अपने संकलन में भर्तहरी ने चन्द्र, वसुराट आदि अपने अनेक पूर्वव्रितयों का उल्लेख किया है जिनका काल चौथी शताब्दी ई. था और जो पाणिनि की व्याकरण प्रणाली से प्रभावित थे।

वाक् के तीन/चार स्तरों के संदर्भ में भर्तहरी ने तीन स्तर स्वीकार किए हैं: पश्यंति, मध्यमा और वैखारी। परावाक् इन तीनों से परे है। यह बहुत सूक्ष्म है और तीनों के स्तरों से हटकर है। साथ ही यह ज्ञानेन्द्रियों से भी परे है। केवल उच्च स्तर के जिज्ञासु ही इसकी अनुभूति कर सकते हैं जो कि शब्दब्रह्म के समान होता है।

भर्तहरी ने प्रतिपादित किया कि इस्तेमाल किए जाने वाले शब्द वैखारी वाक् के नमूने हैं जबकि स्फोट आंतरिक होता है। शब्द से उनका तात्पर्य धात्वर्थक प्रतिपदिकात्मक शब्द है। प्रो. शास्त्री के अनुसार टीकाकारों ने वाक्यपदीय की व्याख्या मुख्य रूप से अद्वैत के नजरिए से की है; कुछ हद तक उन पर कश्मीरी शैव मत का भी प्रभाव रहा है। इस संप्रदाय के दार्शनिकों ने स्वर को बीजभूत कारण के रूप में स्थापित करने करने का प्रयास किया जबकि व्यंजन इनका रूपांतरण यानि कार्य हैं। भर्तहरी की मुख्य चिंता शब्दब्रह्मनो वागेव विश्व भुवनानि जान के सिद्धांत को प्रतिपादित करना था।

प्रो. शास्त्री ने सृष्टि, विघटन आदि के सिद्धांतों पर चर्चा की। सृष्टि के क्रम के संदर्भ में उपनिषदीय सिद्धांत का महाभारत में अनुपालन किया गया है; और पंचरात्र आगम में व्युत्क्रम रूप से विघटन (विध्वंस) पर चर्चा की गई है। विघटन के समय पृथ्वी (पार्थिव तत्त्व) जल (जल-तत्त्व) में विलीन हो जाते हैं और पुनः अग्नि तत्त्व, वायु तत्त्व में समाहित होकर अंततः ईथर यानि आकाश में समाहित हो जाते हैं, लेकिन जहां तक आकश के लयस्थान का सवाल है इसपर सभी ग्रंथ मौन हैं।

अपने व्याख्यान के क्रम में प्रो. शास्त्री ने वाक् के पांच पहलुओं- (1) वैखारि (कंठ में स्थित), (2) उपांशुवाक् (पराश्रव्य सूक्ष्म शब्द), (3) मध्यम (हृदयाकाश में स्थित) (4) पश्यंति (नाभि में स्थित) तथा परा (मूलाधार में स्थित)। विघटन के समय स्पष्ट रूप से सुनी जाने वाली ध्वनि वैखारी उपांशुवाक् में समाहित हो जाती है, उपांशु पुनः मध्यम में विलीन हो जाती है, मध्यम पश्यंति में और पश्यंति सभी इन्द्रियों से परे परावाक् में समाहित हो जाती है और इसकी अनुभूति *केवल* साक्षात्रधर्मनो ऋषि *द्वारा ही की जा स*कती है। यह परावाक् और कुछ नहीं बल्कि शब्दब्रह्म है। जिज्ञासु इस शब्दब्रह्म से ध्यान के जरिए एकाकार होता है और सर्वोच्च चैतन्यता का साक्षात्कार करता है। वाक्यपदीय की चिंता एक रहस्यमयी यात्रा के जरिए शब्दब्रह्म से इसी सर्वोच्च चैतन्यता पहुंचना है।

पाचंवा सत्र (2.2.2008)

व्याख्यान का 5वां सत्र पं. एन.एन. त्रिपाठी के वेद पाठ से आरंभ हुआ। इस सत्र के वक्ता प्रो. शिवाजी उपाध्याय थे जिनका विषय था वाक्यपदीय के व्याकरण दर्शन और आनंदवर्धन के ध्वनिसिद्धांत के बीच अंतर्संबंध स्थापित करना। अध्यक्षीय समिति के सदस्य थे प्रो. वायुनंदन पांडेय, प्रो. कैलाशपति त्रिपाठी और प्रो. बिश्वनाथ भट्टाचार्य।

आरंभ में मानद संयोजक प्रो. के.डी. त्रिपाठी ने एक संक्षिप्त प्रस्तावना भाषण दिया और सौंदर्यशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र अध्ययन एक साथ करने की आवश्यकता पर बल दिया। यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय साहित्य में सौंदर्यशास्त्र और चिंतन की अनुपस्थिति की घोषणा की। हीगल और उसके अनुयायियों ने इस सिद्धांत को फैलाया। इस बिन्दु पर बहस होनी चाहिए। अब भी यह कहा जाता है कि (1) कालिदास के साहित्य, (2) ध्वनि और रस के सिद्धांत तथा (3) अलंकार शास्त्र के अध्ययन से यह साबित होता है कि विद्वानों का ऐसा नजरिया कि भारतीय साहित्य में सौंदर्यशास्त्र अनुपस्थित है, अवैध हो जाता है। हालांकि, यह सत्य है कि मनु और अश्वघोष जैसे कुछ पारंपरिक आचार्यों का रुख संगार (श्रृंगार) को लेकर विरक्तिपूर्ण है और यह सौंदर्यशास्त्र प्रेम पर आधारित था तथा शंगाररस (श्रृंगाररस) इसका उदाहरण है। बौद्ध, मनु और दूसरे लोग इस पर अपना प्रतिसिद्धांत प्रस्तुत करते हैं। अद्वैत वादी शैव मत और अचिंत्यभेदाभेद संप्रदाय ने सौंदर्यशास्त्रीय सिद्धांतों पर विस्तार से चर्चा की है। मधुसूदन सरस्वती ने भी इस सौंदर्य प्रस्थान का प्रतिपादन किया है। अभिनवभारती के आरंभ में अभिनवगुप्त ने श्रृंगार रस के जरिए 28 सात्विकभाषाओं के उदाहरण देने का कारण समझाया है; और यहां वह मनु की चुनौतियों का उत्तर देते हैं।

इसके बाद प्रो. त्रिपाठी ने कुछ सवाल उठाए और उम्मीद की कि व्याख्यानमाला के वक्ताओं द्वारा इन बिदुओं पर समाधान प्रस्तुत किया जाएगा। भामा ने न तो स्फोट को स्वीकारा और न ही व्यंजन शक्ति को, बल्कि उलटे उसने इस पर प्रहार किया। लोल्लाट उत्पत्तिवादी थे, शंकुका और महिमाभट्ट अनुमितिवादी थे। भट्टनायक भुक्तिवादी थे। केवल नंदवर्धन ने स्फोट और ध्वनि को स्वीकार किया। इस नजरिए से स्फोट ध्वनि के जरिए संप्रेषित किया जाता है। रस, सौन्दर्य पर विस्तार से चर्चा करने के बाद भी अभिनव ने स्वयं स्फोट को स्वीकार किया और अभिव्यक्तिवाद के सिद्धांत को विकसित और स्थापित किया। प्रो. त्रिपाठी का सवाल एक व्यापक सौंदर्यशास्त्री सिद्धांत को जन्म देता है। उनका दूसरा सवाल था कि सौंदर्यशास्त्र के पाश्चात्य और प्राच्य दृष्टिकोणों में क्या अंतर है। एक मात्र समानता यह है कि यूनान (ग्रीस) में भी सौन्दर्यमीमांसा नाट्य से ही आरंभ होती है।

सत्र के मुख्य वक्ता **प्रो. शिवजी उपाध्याय** ने कहा कि कला में दर्शन का प्रवेश कराया गया। भारतीय सौंदर्यशास्त्र एक व्यापक वस्तु है और हमारे अलंकारशास्त्र को भी उसी की खान के रूप में

माना जा सकता है। अलंकार की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा कि यत्र यत्र सौंदर्यम अनुभूयते तत्र तत्र अलंकार, यत्र तन्नास्ति तत्र अलंकाराभाव। उसके बाद उन्होंने पंडितराज जगन्नाथ द्वारा दिए गए उपमाअलंकार की परिभाषा उद्धृत किया: सादृश्यम सुन्दरम वाक्यर्थोपक्षरकम उपमालंकटि और कहा कि यहां उपस्कार्योपस्कारक संबंध स्थापित होता है। उन्होंने स्वीकारा कि हमारे वक्ताओं के विभिन्न संप्रदाय और परंपराएं हैं, लेकिन उनके उद्देश्य एक दूसरे को काटना नहीं बल्कि रस और सौंदर्य का अलग-अलग तरीके से विश्लेषण करना था। क्योंकि उनके शब्दों में हर जिज्ञासा शून्य से आरंभ होता है और सर्वोच्चता के लिए संघर्ष पर समाप्त होता है।

अपने व्याख्यान के क्रम में उन्होंने कहा कि शास्त्र दो प्रकार के होते हैं लक्ष्यमुखी और लक्षणमुखी तथा उन्होंने पूर्व वक्ता प्रो. त्रिपाठी के परिचयात्मक व्याख्यान को लक्ष्यमुखी बताया। अपने व्याख्यान को जारी रखते हुए उन्होंने कहा कि हर स्थिति में संक्षिप्त सूत्रों के जरिए सूत्रकार एक नई दिशा खोलते हैं जबकि विश्लेषण और व्याख्या टीकाकार का काम होता है। उन्होंने सूत्रशास्त्र को उसके आरंभ में एक पतली धारा के रूप में बताया और टीका, व्याख्या आदि को इसका विस्तृत रूप कहा।

इस परिचय के बाद उन्होंने अपने विषय व्याकरण दर्शन और आनंदवर्धन के ध्वनिसिद्धांत पर चर्चा की। दोनों की विशालता के कारण उन्होंने अपना मत 25 श्लोकों के रूप में रखा जिसका नाम उन्होंने शब्दब्रह्मविमर्श दिया। शुरुआत उन्होंने शास्त्रम शास्त्रनुबंधित्वतो से की जिसके अनुसार सभी शास्त्र एक दूसरे से संबंधित हैं और यह सूत्र व्याकरणदर्शन तथा ध्वनिदर्शन के लिए उपयुक्त सिद्ध होता है। उन्होंने व्याकरणदर्शन को एक ऐसी प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जहां शब्द को ब्रह्म यानि सर्वोच्च सिद्धांत के रूप में स्थापित किया गया है। इसे शब्दब्रह्म का नाम क्यों दिया गया? अद्वैत के अनुसार ब्रह्म निर्गुण होता है और सीमाओं को शब्दब्रह्म कहा जाता है। टीकाकार के अनुसार ब्रह्म के दो पहलू होते हैं- उच्चतर और निम्नतर। उच्चतर स्तर को शांत, विकल्पातीत और अविक्रिय माना जाता है जबकि निम्नतर स्तर शब्दब्रह्म माना जाता है जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, गुणवान आदि के रूप में वर्णित किया जाता है। इसे ही परा और अपरा ब्रह्म कहा जाता है। पहली स्थिति में गुणों, सीमाओं, विशेषताओं और प्रत्यक्षीकरण का पूर्ण अभाव होता है जबकि दूसरे में

सीमाएं, विशेषताएं और प्रत्यक्षीकरण पाए जाते हैं जो कि शब्दब्रह्म होता है। यही कारण है कि परा और अपरा- ये दो पहलू उनसे संबद्ध हैं।

अब, सवाल है कि इसके साथ ही वही ब्रह्म द्विस्तरीय कैसे होता है। टीकाकार इसका उत्तर देते हैं: कालावच्छेदकतत्त्व विषयभेदच्च संभवति; काल और वस्तुओं के द्वारा विशेषीकृत होने के कारण यह संभव हुआ है। उन्होंने स्फोट को शब्दब्रह्म के रूप में वर्णित किया है जिसका संबंध शब्द और अर्थ दोनों होता है। क्योंकि यह कार्य और कारण दोनों होता है अतएव यह शब्द तथा अर्थ के रूपों में प्रकट होता है। यद्यपि ब्रह्मनिरूपण प्रकरण के अंतर्गत शब्दमंजूषा इसे अन्य तरीके से निरूपित करता है और नागेशभट्ट ने इसका निरूपण आगम के दृष्टिकोण से किया है। *नागेश और भर्तहरी के द्वारा प्रतिपादित शब्दब्रह्म भी अलग-अलग हैं। जहां तक ब्रह्मद्वैत एवं शब्दद्वैत का प्रश्न है, मूल रूप से दोनों समान हैं, अंतर केवल इतना है कि उनके प्रस्तुतिकरण के ढंग अलग-अलग हैं। प्रो. उपाध्याय ने शैलीशैलूशिनाट्य के रूप में इसका वर्णन किया है।*

रसेश्वर विचारधारा के अनुसार रस परम सिद्धांत है। यद्यपि सौंदर्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सौंदर्य को यहां स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया गया है दोनों ही विचारधाराओं में मुख्य विषय समान हैं। शास्त्र इसे अलग-अलग नाम दे सकते हैं- शब्दब्रह्म, रसब्रह्म, रूपब्रह्म किंतु ये सारे सौंदर्यशास्त्र के सारतत्त्व हैं। वास्तव में उपनिषद में उल्लेखित एक मात्र अनंत ब्रह्म को अलग-अलग रूपों और पद्धतियों से व्यक्त किया गया है। अज्ञान के दूर हो जाने पर सांसारिक विषय वस्तु स्वप्न के समान लुप्त हो जाते हैं। चौथे चरण का जिज्ञासु इसके साथ एकाकार हो जाता है। केवल परम चेतना की शेष रह जाती है।

अविद्या की सीमांतता में उसी उच्चतम सिद्धांत का प्रकटीकरण वांछित रहता है। इस उद्देश्य हेतु, काल और अन्य तीन कारक- इच्छा, ज्ञान, क्रिया आवश्यक होते हैं। वाषभदेव अपनी टीका में कहते हैं वे अलग-अलग दिखते तो हैं लेकिन वे एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। इन शक्तियों की आवश्यकता शब्द को मूर्त बनाना (कार्योन्मुखी कारण) होता है।

अपनी टीका में वाषभदेव ने ब्रह्म की तीन संभावित व्युत्पत्तियों को दिखाया है- बहत्त्वेन, बंहितत्वेन, च ब्रह्म। वाक् के स्तर यानि- पश्यंति आदि परावाक से निकले हैं। क्योंकि यह परा बोध क्षमता से परे है, हेलराज ने पश्यंति को दैवी वाणी (ब्रह्मरूप दैवीवाक) के रूप में स्थापित किया।

व्याकरण केवल शब्द-प्रसंस्करण का ही ग्रंथ नहीं है बल्कि इसमें दर्शन में सन्निहित है। वास्तव में व्याकरण तो हर शास्त्र में निहित होता है। इसे सर्वशास्त्र पर्सद कहा गया है। क्योंकि यह सभी विषयों का मूल है इसलिए यह अलंकारशास्त्र से भी संबद्ध है।

प्रो. चंद्रमौली द्विवेदी और **प्रो. रेवा प्रसाद द्विवेदी** ने इसी विषय पर अनेक बिदुओं पर चर्चा की। रेवा प्रसाद द्विवेदी ने वाक्यपदीय तथा अन्य कला के अन्य मौलिक ग्रंथों के आलोचनात्मक संस्करण के निर्माण की आवश्यकता जताई। उनकी राय में पाठों की विविधता दिखाना अर्थ को समझने के लिए बहुत जरूरी होती है।

प्रो. वायुनंदन पांडेय ने अपनी अध्यक्षीय समीक्षा में कहा कि व्याकरण मूलतः शब्दशास्त्र है। मीमांसकों ने शब्द की शाश्वतता को स्वीकारा है न कि स्फोट को। साहित्यशास्त्र में शब्द और अर्थ दोनों पर चर्चा है। ध्वनि को एक अवधारणा के रूप में आनंदवर्धन द्वारा स्थापित किया गया है। लेकिन पूर्व वार्ताकार भामा ने स्फोट को नहीं स्वीकारा और न ही उसने ध्वनि की आवश्यकता महसूस की। व्याकरणवादियों ने शब्द के अर्थ को समझने के लिए स्फोट को स्वीकारा। अब सवाल है स्फोट किसे कहें? प्रो. पांडेय ने कहा कि मध्यम वाक् स्फोट है। नागभट्ट ने इसे आगमीय नजरिए से समझाया। उन्होंने समझाया: मनोजगत में जिस तरह एक संस्कार दूसरे संस्कार को प्रकट करता है, उसी तरह वक्ता द्वारा कहा गया शब्द हवा में आघात उत्पन्न करता है और ध्वनि तरंगों का निर्माण होता है जो सुनने वाले के कानों तक पहुंचता है। ध्वनि के इसी तरंग या शब्द-सार को स्फोट कहते हैं।

अपने व्याख्यान में, प्रो. पांडेय ने कहा कि मूलाधार में स्थित परावाक संकल्पकार होता है, जब यह नाभि में पश्यंति पर आघात करता है यह केवल वायु रूप (वायवाकार) होता है जो पुनः हृदय के मध्यम पर आघात करता है और एक सूक्ष्म ध्वनि उत्पन्न होती है। यह स्फोट है जो अंततः स्वर रज्जु पर आधात करता है और कड़ी भाषा या वैखारी वाक् के बाहर में निकलता है।

प्रो. पांडेय ने अपने व्याख्यान में ध्वनि, व्यंजन और स्फोट तथा उनकी आवश्यकता के बारे में चर्चा की। उसके बाद उन्होंने दर्शन की अन्य प्रणालियों में शब्दब्रह्म की स्थिति के बारे में प्रकाश डाला। नैयायिक शब्द के केवल दो कार्य स्वीकारते हैं- अभिधा और लक्षण; व्यंजन के बारे में वे कोई चिंता नहीं करते। इसलिए, स्फोट या ध्वनि को स्वीकार करने का कोई सवाल ही उठता। शंकर ने

ब्रह्म और शब्द की शाश्वतता का प्रतिपादन किया। वैष्णवों ने खास कर भागवत संप्रदाय ने शब्दब्रह्म को परब्रह्म के रूप में स्वीकारा। अद्वैतवादियों के अनुसार मुक्ति आत्म-ज्ञान से मिलती है जो कि वाक् के सदृश है, इसलिए शब्द की शाश्वतता स्थापित होती है। लेकिन शंकर ने अंततः स्फोट को अस्वीकार कर दिया है (बीएस I.3.28)।

जहां तक सौंदर्य का सवाल है इसके नमूने हमारे साहित्य में बिखरे पड़े हैं, हमें इसे पाश्चात्य दर्शन से आयात करने की जरूरत नहीं है।

अध्यक्षीय समिति के एक अन्य सदस्य **प्रो. कैलाशपति त्रिपाठी** ने कहा कि शब्दब्रह्म की चर्चा वाक्यपदीय के मंगलाचरण श्लोक में की गई है। यहां शब्दतत्त्व की व्याख्या अनश्वर या अक्षर के रूप में की गई है; इस अक्षर का सार स्फोट है और व्याकरणवादियों का उद्देश्य था इसकी शाश्वतता को प्रतिपादित करना। आनंदवर्धन ने अपने ध्वन्यलोक में पांच स्तरीय ध्वनियों को स्वीकार किया है:-

1) ध्वनति ध्वनयतिति वा यः वाचक शब्दः सा ध्वनि;
2) ध्वनति ध्वनयतिति वा यः व्यंजक अर्थ, सा ध्वनि;
3) *ध्वन्यते इति यो व्यंग्यर्थो, सा ध्वनि;*
4) ध्वन्यते अनेन इति शब्दार्थयो व्यंजनरूपव्यापर ध्वनि;
5) ध्वन्यते अस्मिन्निति, ध्वनिकव्यास्यपि ध्वनित्वम।

यह ध्वनि स्फोट के जरिए संचरित होते है। ध्वनि का व्यकरणीय अर्थ आवाज है लेकिन साहित्यशास्त्री इसे अधिक व्यापक रूप से स्वीकार करते हैं और वह शब्द तथा अर्थ दोनों पहलुओं को स्वीकारते हैं। व्यंजन के जरिए अनेक अर्थ सुझाए जा सकते हैं। निःसंदेह आनंदवर्धन का योगदान अनोखा है। शब्दसंयोजन के जरिए कुण्डाभट्ट भर्तहरी, नागेश ने अन्वय तथा मूल अर्थ के विश्लेषण के जरिए व्याकरण, प्रक्रिया और परिष्कार के दो चरण प्रस्तुत किए। प्रो. त्रिपाठी के अनुसार वाक्यपदीय का संबंध विश्लेषणात्मक ग्रंथ से है। ध्वन्यलोक का संबंध भी उसी से है। अपने व्याख्यान के अंत में प्रो. त्रिपाठी ने विषय के समग्र अध्ययन के लिए वाक् पर अलग से एक कार्यशाला के आयोजन की सलाह दी।

अध्यक्षीय समिति के तीसरे सदस्य **प्रो. विश्वनाथ भट्टाचार्य** ने अपनी समीक्षा दंडिन के एक उद्धरण से आरंभ किया कि शब्द ही वह एकमात्र प्रकाश है जो संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है।

सबसे पहले प्रो. भट्टाचार्य ने भर्तहरी की तिथि के समस्यामूलक विषय पर चर्चा की। यद्यपि यह बहस का एक मुद्दा है लेकिन कुछ तथ्यों के आधार पर भर्तहरी की तिथि की उच्चतम और निम्नतम संभावित सीमा निर्धारित की जा सकती है, जैसे कि- (1) चीनी यात्री इत्सिंग ने 690 ई. में अपनी यात्रा का विवरण देने के क्रम में भर्तहरी से मिलने में अपनी असमर्थता पर खेद प्रकट किया था जो उसके अनुसार केवल पचास वर्ष पहले देहावसान को प्राप्त हुए थे। इस तरह भर्तहरी की तिथि की उच्चतम सीमा 7वीं सदी ई. के मध्य निर्धारित की जा सकती है। दूसरे..।

अपने व्याख्यान के क्रम में प्रो. भट्टाचार्य ने कहा कि व्याकरण का उद्देश्य है भाषा को व्यवस्थित करना और शब्दों का सही प्रयोग करना। पहले के साहित्यशास्त्री ध्वनि को मानते थे। यह आनंदवर्धन थे जिन्होंने इसे काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिपदित किया। उन्होंने पाया कि काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता के रूप में ध्वनि की अवधारणा साहित्यिक आलोचकों के बीच लोकप्रियता हासिल कर रही थी। इसलिए उन्हें ध्वनिकार कहा गया। यहां ध्वनि एक तकनीकी शब्द है, कोई आकस्मिक अधिप्राप्ति नहीं।

उन्होंने बताया कि यहां दो अर्थ हैं: वाच्य और प्रतीयमान। अब तक किसी ने इस प्रतीयमान यानि प्रत्यक्ष अर्थ को नहीं स्वीकारा है। ध्वनिकार के अनुसार काव्य की आत्मा उसका अर्थ यानि भाव है जो कि काव्य के रसिक या कद्रदान को आनंद प्रदान करता है। प्रतीयमान के लिए एक वैकल्पिक शब्द है व्यंजन (सुझाव)। *चूंकि सुझाव का तत्त्व ध्वनि और स्फोट के लिए समान होता है साहित्यशास्त्रियों ने ध्वनि सुझावकर्ता, (1) न केवल यह सुझावकर्ता शब्द और उसके दोहरे अर्थ यानि (2) वाच्य या अस्पष्ट और (3) वाच्य और व्यंग्य, बल्कि (4) सार रूप में वाचिक शक्ति (व्यंजनव्यापार) और साथ ही वह जिसे ध्वनिकाव्य नाम दिया गया है, के द्वारा स्पष्ट अक्षर स्वीकार किए हैं- ये सभी पांच ध्वनि बताए गए हैं, ध्वन्यलोक लोचन में इसका स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है।*

जहां तक इसके विपरीत मत का सवाल है, ध्वनिकार ने इसका अनुभव अपने जीवन काल में भी किया। शब्द के *सार रूप में वाचिक शक्ति और सुझाए गए अर्थ को निर्धारित करने के लिए अर्थ को भी स्फोट कहते हैं और इसे ही अलंकारिकों द्वारा ध्वनि कहा गया। व्याकरण को सर्वशास्त्रपर्षद बताया गया है। इसलिए अपने ही सिद्धांत की वैधता को सिद्ध करने के लिए ध्वनिकार ने*

व्याकरणवादियों के हवाले से और परामर्शनीयता में उनकी समानता के आधार पर स्फोट अर्थात् ध्वनि और इनके पांच प्रकारों पर अपना मत प्रकट किया।

स्फोट सिद्धांत नश्वर भौतिक जगत से आध्यात्मिक आत्म चेतना की ओर राह दिखाता है, वैखारी रुक्ष भाषा से परा- वाक् के उच्चतम सिद्धांत की ओर ले जाता है। यही भर्तहरी का योगदान है और इसीमें वाक्यपदीय की उत्कृष्टता झलकती है।

व्याख्यान के अंत में मानद संयोजक ने धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत किया।

विदाई सत्र

व्याख्यानमाला की अंतिम कड़ी विदाई सत्र के रूप थी जिसकी शुरुआत डॉ. श्रीमती स्वरवंदना शर्मा द्वारा प्रस्तुत मंगलाचरण हुई। सत्र के मुख्य अतिथि थे प्रो. प्रद्योत कुमार मुखोपाध्याय जबकि पंडित हेमेन्द्र नाथ चक्रवर्ती ने अध्यक्ष की भूमिका निभाई। इस सत्र का संयोजन डॉ. सुकुमार चट्टोपाध्याय द्वारा किया गया।

आरंभ में मानद संयोजक ने संपूर्ण व्याख्यानमाला के समस्त व्याख्यानों का सार प्रस्तुत किया। बाद में प्रो. पी.के. मुखोपाध्याय ने मुख्य-अतिथि का भाषण दिया।

प्रो. पी.के. मुखोपाध्याय - प्रो. के.डी. त्रिपाठी के व्याख्यान की कड़ी में प्रो. पी.के. मुखोपाध्याय ने कहा कि पूर्व वक्ता ने इस व्याख्यान सत्र की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। संपूर्ण कार्यक्रम (1) स्व. पंडित वी.एन. मिश्र द्वारा आयोजित पूर्व व्याख्यानमाला की अगली कड़ी के रूप में था, (2) काशी परंपरा के अनुसार अध्ययन और शिक्षण का संरक्षण और विस्तार था, और (3) प्राच्य एवं पाश्चात्य चिंतन तथा भाषा के दर्शन विषय के बीच संबंध कायम करना जैसा कि प्रो. टी.आर..वी. मूर्ति 1964 में बनाना चाहते थे।

अपने व्याख्यान के क्रम में उन्होंने कहा कि 20वीं सदी तक विश्वविद्यालय विभाग सारा ध्यान प्रत्यक्ष, अनुमान आदि के अध्ययनों पर देते थे। आगे चलकर, शब्द का अध्ययन (शब्दबोध) को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। कंप्यूटर आने के बाद भाषाविज्ञान अध्ययन के क्षेत्र में एक नया क्षितिज खुला। इस संदर्भ उन्होंने यादवपुर विश्वविद्यालय, कलकत्ता के दर्शन विभाग के उल्लेखनीय प्रयास पर प्रकाश डाला। उन्होंने संपूर्ण शब्दतत्त्वचिंतामणि और इसकी प्रकाश टीका प्रकाशित की

जिसका संपादन प्रो. पी.के. मुखोपाध्याय और प्रो. शुभरंजन साहा ने किया था। कंप्यूटर का इस्तेमाल शुरू होने के बाद उन्होंने मशीन-भाषा विकासित करने का प्रयास भी किया। प्रो. मुखोपाध्याय के अनुसार आधुनिक कंप्यूटर भाषा का आधार पाणिनि का व्याकरण और भर्तहरी का भाषा दर्शन है। यह अवश्य स्वीकार किया जाना चाहिए कि कंप्यूटर के आने से पहले भी प्राचीन भारत में कंप्यूटराइज़्ड विद्वान मौजूद थे। यूरोप में भाषा का अध्ययन विवराणत्मक व्याकरण तक सीमित था। पाणिनि व्याकरण के विस्तृत अध्ययन के बाद एक नया पहलू उत्पादक व्याकरण के रूप में उजागर हुआ। इसलिए, आधुनिक भाषाशास्त्रीय अध्ययन को सही ढंग से समझने के लिए न्याय, मीमांसा और व्याकरण दर्शन का अध्ययन अति आवश्यक है।

प्रो. मुखोपाध्याय ने अपने व्याख्यान में विद्वानों और अन्य विषयों के साथ अंतर्क्रिया की आवश्यकता पर जोर दिया। इस संदर्भ में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन और एमएम. गोपीनाथ कविराज के प्रयास निःसंदेह अनोखे थे। लेकिन दुर्भाग्य से यह फलीभूत नहीं हो सका। क्योंकि, राधाकृष्णन का तरीका पूर्णतः शास्त्रनिष्ठ नहीं था। कविराज की स्थिति में समकालीन विद्वानों की दत्तचित्तता का अभाव और उदासीनता जिम्मेवार कारक थे। हालांकि, शास्त्र के पुनरुद्धार के लिए सही अनुवाद अति आवश्यक है। क्योंकि मूल पाठों/ग्रंथों को समझना बहुत कठिन होता है लोग उनके अध्ययन को इच्छुक नहीं होते। कभी-कभी समयाभाव, विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम की विशालता, योग्य आचार्यों का अभाव भे उनके उदासीन रुख के कारण होते हैं।

शास्त्र के पुनरुत्पादन की अपनी राय में शस्त्रीय कार्य अभिव्यंजनात्मक होना चाहिए और फिर उनका सही अनुवाद किया जान चाहिए। साथ ही विश्लेषणात्मक शैली भी आवश्यक होती है।

प्रो. मुखोपाध्याय ने कहा कि इन तीन दिनों के दौरान सभी वक्ता वाक्पदीय की आवश्यकता और महत्व को प्रतिपादित करने में अपना ध्यान केंद्रित किया और इसकी सराहना की लेकिन किसी ने भी इसके सिद्धांतों का खंडन नहीं किया। तब उन्होंने एक सवाल उठाया कि व्याकरण दर्शन के लिए कौन सा अभिव्यंजन सही होना चाहिए। भारतीय दर्शन के विश्वकोश (व्याकरण खंड) में अशोक अकुल्ज्कर ने इसे तीन तरीके से प्रस्तुत किया- (1) वैयाकरणिक दर्शन, (2) व्याकरण का दर्शन और (3) व्याकरणीय दर्शन।

प्रो. मुखोपाध्याय ने अपने व्याख्यान में एक अन्य महत्वपूर्ण बिन्दु उठाया कि ज्ञान की अनेकानेक शाखाओं वाले इस युग में चाहे चार या चौदह अथवा अठारह शखाओं की बात हो दर्शन शब्द का उल्लेख कहीं नहीं होता। सर्वदर्शनसंग्रह ही एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जिसमें दर्शन शब्द का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। अब सवाल व्याकरण दर्शन में इस शब्द के सम्मिलित होने को लेकर उठता है। उन्होंने पूर्ण स्तरीय दर्शन के दो/तीन आवश्यक शर्तों का उल्लेख किया; (1) सर्वोच्च सिद्धांत, (2) सृजन का सिद्धांत और (3) जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग, इन तीनों पर चर्चा। प्रत्येक दर्शन को इस विशेषताओं या शर्तों को पूरा करना चाहिए। भर्तहरी का ग्रंथ इन सभी बिन्दुओं को अपने अन्दर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में स्थान देता है। वाक/शब्दतत्त्व से रचना या सृजन के इस सिद्धांत को स्पष्ट रूप से समझने के लिए प्रत्याशी को सांसारिक स्तर से आध्यात्मिक स्तर, वैखारी से परा की ओर का अवरोही मार्ग पकड़ना चाहिए जो केवल साधना से ही संभव है।

पं. हेमेन्द्र नाथ चक्रवर्ती ने कार्यक्रम की सफलता पर अपना संतोष व्यक्त किया और आशीर्वचन के शब्द कहे। डॉ. कमलेश झा के धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

उद्यत: डॉ. प्रणति घोषाल